पारस परस

वर्ष-7 अंक-3 जुलाई-सितम्बर, 2017, रजि. नं.:यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

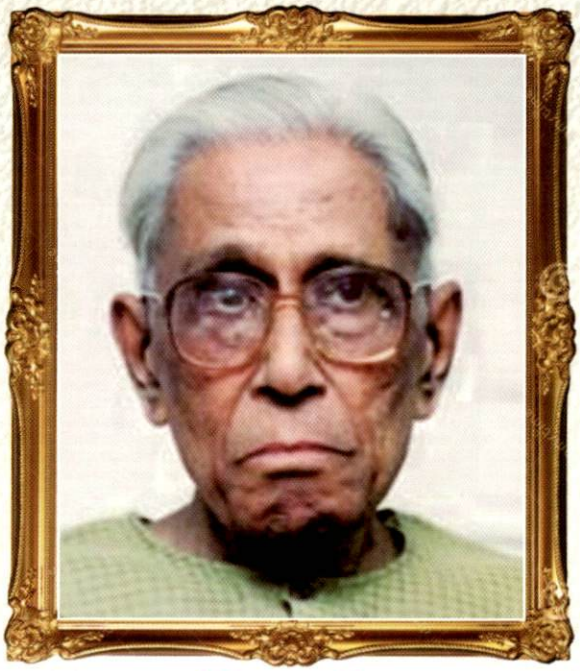

नेमिचन्द्र जैन

जन्म- 16 अगस्त 1919, निधन- 24 मार्च 2005

आगे गहन अन्धेरा है, मन रुक–रुक जाता है एकाकी,
अब भी है टूटे प्राणों में किस छवि का आकर्षण बाकी?
चाह रहा है अब भी यह पापी दिल पीछे को मुड़ जाना,
एक बार फिर से दो नैनों के नीलम–नभ में उड़ जाना,
उभर–उभर आते हैं मन में वे पिछले स्वर सम्मोहन के,
गूँज गए थे पल–भर को बस प्रथम प्रहर में जो जीवन के,
किन्तु अन्धेरा है यह, मैं हूँ, मुझको तो है आगे जाना–
जाना ही है– पहन लिया है मैंने मुसाफिरी का बाना।

वर्ष : 7 अंक : 3 जुलाई-सितम्बर, 2017 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं
की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक मंडल
डा. एल.पी. पाण्डेय
अभिमन्यु कुमार पाठक
अरुण कुमार पाठक

संपादक
डॉ अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
अभ्युदय प्रकाशन प्रा.लि.
लखनऊ
मो. 9696433312

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डा. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डा. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
पुण्य स्मरण		4
श्रद्धा सुमन		
पितृ आशीष	डा. अनिल कुमार पाठक	5
कालजयी		
करुणामय हे करुणामय!	पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	6
भीड़	नेमिचन्द्र जैन	7
तरुण	त्रिलोचन	8
अभियोग	डा. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय	9
फिर कर लेने दो प्यार, प्रिय	दुष्यंत कुमार	10
व्यंग्य मत बोलो	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	11
समय के सारथी		
जिन्दगी भी एक बहती धार है	दयाशंकर अवस्थी 'देवेश'	12
अहसासों के चन्दन वन में	चक्रपाणि पाण्डेय	13
तुम सजाओ उर्वशी चितवन सलोनी	आर्य भूषण गर्ग	14
अविरल मधुरिम कंठ मुझे दो	नन्द कुमार मनोचा 'वारिज'	15
एक नदिया है	श्याम नारायण श्रीवास्तव 'श्याम'	16
गजल	राजेन्द्र वर्मा	17
कलरव		
मेरे मामा	सरोजनी अग्रवाल	18
कतंक थैया	श्रीकृष्णचन्द्र तिवारी 'राष्ट्रबन्धु'	19
उड़ा कबूतर	श्याम सिंह 'शशि'	20
दल बदलू हवाएँ	सीताराम गुप्त	21
उद्बोधन		
रक्षा बंधन	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	22
प्रयाण-गीत	रामधारी सिंह दिनकर	23
नारी स्वर		
तुमको देश पुकार रहा है	श्रीमती कृष्णा अवस्थी	24
इस धरा की धूल वन्दनीय है	श्रीमती चन्द्रकांता चन्द्र	25
आखर-आखर नाम तुम्हारा	निर्मला 'साधना'	26
मन का दर्पण	मंजुलता तिवारी सुशोभिता	27
आधार दिया क्यों तुमने	श्रीमती शालिनी	28
सात सुरों से ताल	रश्मि अग्रवाल	29
आवरण	डा. अमिता दुबे	30
अन्तर्द्वन्द्व	रचना शुक्ल	31
एक हरा पत्ता	डा. शान्तिदेव बाला	32
प्रिय सदा चलते रहो तुम	कु. सावित्री	33
नवोदित रचनाकार		
नहीं है लाचारी में	हीरा लाल	34
आदमी	अजय सिंह वर्मा	35
अपना बन जाने दो	मोहन चन्द्र त्रिपाठी 'मोहन'	36
बेटियाँ	जगदीश शुक्ल	37
हुई आज भयभीत दुनिया ये सारी	राकेश 'चक्र'	38
उदासी नहीं है	वाहिद अली 'वाहिद'	39
गजल	प्रीतम सिंह राही	40

कृष्ण होना कठिन है तो सुदामा होना और भी कठिन है

एक दिन एक परिचित मेरे पास आये। उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था कि वे किसी बात से आहत हैं और अत्यन्त क्रोध में हैं। मैंने अभिवादन के पश्चात् उन्हें ससम्मान बैठाया और कुछ पेय पदार्थों के नाम गिनाते हुये उनकी इच्छानुसार पेय मँगाने के लिये प्रस्ताव रखा किन्तु उन्होंने बेमन से और नकारात्मक उत्तर दिया। मैंने समझ लिया कि मामला कुछ गम्भीर है क्योंकि ये तो अत्यन्त सहज स्वभाव वाले व्यक्ति हैं। हमेशा किसी के भी काम से, कहीं भी,किसी भी समय व किसी के पास जाने के लिये तैयार रहते हैं। यदि किसी से उनका दूर–दराज का भी परिचय है और उससे किसी का कोई काम पड़ गया तो ये महाशय झोला उठाकर उस व्यक्ति से काम कराने के लिए सहज तैयार हो जाते हैं। उनके साथ ऐसा भी नहीं है, कि वे दलाली करते हों या जिसकी मदद करने जा रहे हों उससे कोई बेजा फायदा उठाते हों बल्कि ऐसा करना उनकी आदत व स्वभाव बन गया है। या यो कहें कि अब यह उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं में शामिल हो गया है। खैर! मैं उन महाशय की परिस्थितियों को समझने की कोशिश करने लगा। मैंने उनकी प्रशंसा करते हुये, उनसे पूछा कि वे इतने आक्रोशित क्यों हैं? उन्होंने कहा कि वे आक्रोशित नहीं है बल्कि आहत एवं दुःखी हैं। मैंने उनकी पीड़ा की तह तक जाने की कोशिश की। पहले तो वे इधर–उधर की बातें करते रहे अन्ततः उन्होंने अपनी व्यथा–कथा इस प्रकार व्यक्त की–

"मेरा एक लँगोटियायार है। हम साथ ही साथ पले,बढ़े,पढ़े व कढ़े। अब वह बहुत बड़े ओहदे पर है और हम समाज भक्ति में चप्पलें घिस रहे हैं। कल अपने एक परिचित के काम के लिये मैं उसके पास गया। पहले तो उसने काफी इंतजार कराने के बाद मुझे मिलने के लिये बुलाया और दूसरे कोई मदद भी नहीं की। मैंने भी खुले शब्दों में उसे भला–बुरा कह दिया और वापस चला आया।" वे आगे बोलते जा रहे थे– " कुछ लोग बड़ा आदमी बन जाने के बाद अपने मित्रों को भूल जाते हैं और उन्हें तवज्जो नहीं देते हैं जो उनके स्तर के नहीं हैं या उनके समकक्ष नहीं हो पाये। इसी तरह मेरा यह मित्र भी है। उसने मेरा अनुरोध न मानकर मुझे निराश किया है। अब से हमारा उसका कोई रिश्ता नहीं रहा"।

उनकी बातों को सुनकर मैंने कहा, "आप उनके पास गये ही क्यों ? और गये तो उनसे कुछ माँगा ही क्यों ?उनसे कुछ पाने की अपेक्षा ही क्यों की ?" मेरे मुँह से यह भी निकल गया– " रहिमन वे नर मर चुके जे कछु माँगन जाहिं ।"

मेरे मित्र रहीम जी के इस दोहांश को सुनकर तपाक से बोले," आधा दोहा क्यों सुना रहे हो, इसे पूरा करो कि "उनते पहिले वे मुये जिन मुख निकसत नाहिं।" मैंने कहा कि आप बात तो बिल्कुल सही कर रहे हैं, लेकिन जब आपको आभास हो गया था कि आपके मित्र आपकी अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतरेगें तो आपको अपने मन की बात उनके सामने प्रकट ही नहीं करनी चाहिये थी। उन्होंने कहा "तुमने पहले भी जरूर सुन रखा होगा किन्तु तुम्हें फिर से कृष्ण व सुदामा की मित्रता का दृष्टान्त सुनाना चाहता हूँ। तुमने रहीम जी का दोहा सुना होगा " कहाँ

सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग''। मैंने कहा, '' मैंने सुना भी है, गुना भी है'' लेकिन वे रुके नहीं और अपनी परिस्थिति को सुदामा की तरह मानते हुये कहने लगे, ''मैं मानता हूँ कि मैं सुदामा की तरह हूँ लेकिन मेरा मित्र कृष्ण की तरह सक्षम होते हुये भी कृष्ण नहीं बन पाया इसलिए वह बड़ा होकर भी बड़ा नहीं है।'' मैंने कहा, '' आपका मित्र सक्षम होते हुये भी कृष्ण नहीं बन पाया, मैं यह तो मान लेता हूँ मगर आप भी तो सुदामा नहीं बन पाये ''। मेरी इस बात पर उन्हें गुस्सा आ गया। उन्होंने कहा, ''आप अतार्किक बात कह रहे हैं।'' मैंने उन्हें उत्तर दिया, ''आपकी बातें आपके लिये तार्किक हैं क्योंकि आप कृष्ण और सुदामा की तुलना वैभव, पद, प्रतिष्ठा व समृद्धि के आधार पर कर रहे हैं जबकि मैं इन दोनों को उनके व्यक्तित्व व चरित्र के धरातल पर देख रहा हूँ । आपको सही लग रहा है कि कृष्ण ने सुदामा को ढेर सारा वैभव एवं ऐश्वर्य अपनी मित्रता के कारण प्रदान कर दिया लेकिन आप यह भूल रहे है कि सुदामा ने कहीं भी, कभी भी, और कुछ भी पाने की याचना कृष्ण से नहीं की। यहाँ तक कि उनकी पत्नी ने उन्हें कृष्ण के पास अपनी गरीबी एवं अकिंचनता दूर करने सिखा–पढ़ाकर भेजा, इसके बावजूद जब सुदामा कृष्ण से मिले तो उन्होंने उनसे न तो अपनी दीनता का उल्लेख किया और न ही अपनी गरीबी के बारे में कुछ कहा। मित्र का आतिथ्य ग्रहण करने के बाद बिना कुछ माँगे ही वे वहाँ से चले आये। उन्हें घर वापस आने के बाद देखा कि उनके मित्र कृष्ण ने उन्हें बिना कुछ माँगे ही सब कुछ दे दिया है। कदाचित् कृष्ण और सुदामा की मैत्री में ऐसी आत्मीयता व प्रगाढ़ता थी जिसे वाचिक रूप में व्यक्त करना उचित नहीं था। उनमें आत्मैक्य था जिससे उन्हें अपनी भावाभिव्यक्ति हेतु बाह्येन्द्रियों की आवश्यकता नहीं थीं।''

मेरा यह तर्क चल ही रहा था तभी उनके मोबाइल पर फोन आ गया। उन्होंने मेरी बात को बीच में काटते हुये कहा, ''उसी परिचित का फोन आ रहा है जिसके काम के लिये मैं गया था''। मैंने कहा, '' फोन उठाइए''। उन्होनें फोन उठाया। उधर से उनके परिचित ने बताया, ''मेरा काम हो गया। यह सब आपके मित्र की कृपा से हुआ है।'' उसके बाद उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। उन्होंने भर्राई आवाज में परिचित को बाद में बात करने के लिये कहते हुये फोन रख दिया और फूट–फूट कर रोने लगे । काफी देर बाद जब वे सामान्य हुये तो कहने लगे, ''मुझे अपने मित्र को पहचानने में गलतफहमी हो गयी । तुम यह बात सही कह रहे हो जितना कठिन कृष्ण होना है,उससे कठिन सुदामा होना है, क्योंकि हम कृष्ण और सुदामा की तुलना करते समय यह भूल जाते हैं कि उनमें वैभव,ऐश्वर्य पद, प्रतिष्ठा का अन्तर तो है लेकिन उनमें अपना–अपना वैशिष्ट्य भी है। सुदामा निर्धन होकर भी अपने लिये माँगते नहीं और श्रीकृष्ण बिना माँगे ही सभी कुछ दे देते हैं किन्तु कुछ कहते नहीं हैं''। इसके बाद उनका क्रोध शांत हो गया और थोड़ी देर के बाद वे मित्र के पास जाने के लिये उठ गये।

मुझे विश्वास है कि पूर्व अंकों की सामग्री आपको अच्छी लगी होगी। वर्तमान अंक भी इसी अपेक्षा के साथ प्रस्तुत है कि आप हमें हिन्दी के विकास में अपना सहयोग, मार्गदर्शन व आशीर्वाद प्रदान करते रहेंगे।

शुभ कामनाओं के साथ,

डा0 अनिल कुमार

पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

जन्म– 17 जुलाई 1932
निधन– 23 जनवरी 2008

तुम अनादि हो, तुम अनन्त हो, दिग्दर्शक, प्रेरक, अरिहन्त।
अजर, अमर, हे प्राणतत्व! तुम, कण-कण में व्यापी बसन्त।।

शिक्षाविद् व हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर **स्व0 पारस नाथ पाठक 'प्रसून'** का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद–जौनपुर के गोपालपुर ग्राम में गुरुपूर्णिमा को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों से प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, गोरखपुर विश्वविद्यालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से विभिन्न उपाधियाँ प्राप्त कीं। वे सर्वोदय विद्यापीठ इण्टर कालेज, मीरगंज, जौनपुर में हिन्दी विषय के प्रवक्ता पद पर कार्यरत रहे।

स्व. **'प्रसून'** की पावन स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए **'पारस परस'** नाम से काव्य–त्रैमासिकी प्रकाशित करने का संकल्प लिया गया जो निर्बाध गति से चल रहा है।

स्वर्गीय 'प्रसून' जी के जन्म दिवस पर विनम्र श्रद्धांजलि

पितृ आशीष

- डा. अनिल कुमार पाठक

कभी न खोना तुम ढाढस,
मेरे जैसा रखना साहस।
घबरा कर बाधा–कठिनाई से,
हो मत जाना, पथ से वापस।
सूक्ष्म रूप में पास सदा मैं खड़ा हुआ।
आशीष स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ।।

विरथ भले हो जाना,
जीवन भर तुम पदगामी।
पर रहना बेटा हरदम,
तुम सच्चरित्र, सद्गामी।
राह दिखाऊँगा चलकर जिस पर मैं बड़ा हुआ।
आशीष स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ।।

ज्ञान ज्योति से तिमिर हटेगा,
ध्वज लहरेगा सच्चाई का।
बस अहंकार मत करना,
नश्वर क्षणिक ऊँचाई का।
जग देखेगा तुम्हें, शिखर पर चढ़ा हुआ।
आशीष स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ।।

❖❖❖

करुणामय हे करुणामय!

- पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

करुणामय हे करुणामय!
जीवन–घन मधुमय रस बरसे।।

छा जाये हरियाली भू पर,
तारों से भर जाये अम्बर,
हो प्रकाश की रेखा घर–घर,
जीवन–बसुधा फिर से सरसे।
करुणामय हे करुणामय!
जीवन–घन मधुमय रस बरसे।।

स्वप्नों का हो जाए बसेरा,
जीवन–पथ से मिटे अंधेरा,
आ जाये इक नया सवेरा,
जीवन शतदल फिर से हरषे
करुणामय हे करुणामय!
जीवन घन मधुमय रस बरसे।।

यह विश्व खड़ा, रोये न कभी,
चेतना मधुर सोये न कभी,
बसुधा शापित होवे न कभी,
वरदान मिले जीवन को फिर से।
करुणामय हे करुणामय!
जीवन–घन मधुमय रस बरसे।।

जीवन की रसमयी भावना,
जगती की नित नयी साधना,
उर–उर में भर दें मधु कंपन,
छू तेरी प्रतिमा के कर से।
करुणामय हे करुणामय!
जीवन घन मधुमय रस बरसे।।

❖❖❖

भीड़

- नेमिचन्द्र जैन

कितने दिनों बाद आज फिर जब
तुमसे सामना हुआ।
उस भीड़ में अकस्मात
जहाँ इसकी कोई आशंका न थी,
तो मैं कैसा अचकचा गया
रंगे हाथ पकड़े गये चोर की भाँति।
तुरंत अपनी घोर अकृतज्ञता का
भान हुआ,
लज्जा से मस्तक झुक गया अपने आप।
याद पड़ा तुमने ही दिया था
वह बोध,
जो प्यार के उलझे हुए धागों को
धीरज और ममता से सँवारता है,
दी थी वह करुणा
जिसके सहारे
आत्मीयों के असह्य आघात सहे जाते हैं,
सह्य हो जाते हैं–
और वह अकुण्ठित विश्वास
कि जीवन में केवल प्रवंचना ही नहीं है
अन्तर की अकिंचनताएँ प्रतिष्ठित
सहयोगियों की कुटिलता ही नहीं है,
किसी क्षणिक सिद्धि के दम्भ में
शिखर की छाती कुचलने को उद्यत
बैनों का अहंकार ही नहीं है–
जीवन में और भी कुछ है।
तुम्हारी ही दी हुई थी
वह अनन्य अनुभूति
कि वर्षा की पहली बौछार से
सिर–चढ़ी धूल के दबते ही
खुली निखरने वाली
आकाश की शान्तिदायिनी अगाध नीलिमा,
वर्षों बाद अचानक
अकारण ही मिला
किसी की अम्लान मित्रता का सन्देश,
दूर रह कर भी साथ–साथ एक ही दिशा में
चलते हुए सहकर्मियों का आश्वासन–
ये सब भी तो जीवन में हैं,
तुम ने कहा था।
यह सब,
न जाने और क्या–क्या
मुझे याद आया
और एक अपूर्व शान्ति से
परिपूर्ण हो गया मैं
जब आज
अचानक ही भीड़ में
इतने दिनों बाद
तुम से यों सामना हो गया
ओ मेरे एकान्त।

❖❖❖

तरुण से

- त्रिलोचन

तरुण
तुम्हारी शक्ति अतुल है
जहाँ कर्म में वह बदली है
वहाँ राष्ट्र का नया रूप
सम्मुख आया है
वैयक्तिक भी कार्य तुम्हारा
सामूहिक है

और जहाँ हो
वहीं तुम्हारी जीवनधारा
जड़–चेतन को
आप्यायित, आप्लावित करती है
कोई देश
तुम्हारी साँसों से जीवित है
और तुम्हारी आँखों से देखा करता है,
और तुम्हारे चलने पर चलता रहता है।

मनोरंजनों में है इतनी शक्ति तुम्हारे
जिससे कोई राष्ट्र–
बना बिगड़ा करता है
सदा सजग व्यवहार तुम्हारा हो

❖❖❖

अभियोग

वही आवाज पुरानी चेतन गूँजेगी,
फर्श के नीचे तुमने जिसको दफनाया,
उसकी अवाक मूर्छा भी निश्चित टूटेगी।

महल आकाश–चूमते धरती चूमेंगे,
अटारियाँ, शिखर, सौ शताब्दियाँ धोखे की,
लद जायेंगी, क्रांन्ति के केतन झूमेंगे।

तूर्य के स्वर से काँप उठेंगी सभी दिशा,
भाग उठेंगे दिग्गज, खुल जायेंगे क्षितिज,
छूटते होंगे तीर सुबह के, विगत निशा।

तुम्हें देखकर होगा रुद्ध मुक्ति का द्वार,
सुई के मुँह–सा बन कर तुमसे पूछेगा,
दीप्त स्वरों में मानो दहक रहे अंगार।

कहाँ छिपायी अब तक, कहो, न्याय की तुला?
बहा पसीना उनका, तोंद तुम्हारी बढ़ी
जिसके श्रम की उपज उसी को बेची भुला।

दुर्निवार आदत से झूठ फिर बोलोगे,
हट जायेगा किन्तु सत्य का स्वर्णावरण,
दूसरी जिह्वा उसी और उसी क्षण खो दोगे,
तीसरी अपलक आँख सत्य की घूरेगी,
वही आवाज पुरानी चेतन गूँजेगी।

❖❖❖

कश्मीर

– डा. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय

स्निग्ध अंक में लिये हुए हो झेलम वामा,
जहाँ शिकारों से श्रीनगर बन गया वेनिस।
हैम–शिखर–गोपित काशी–सी उत्तरधामा,
उज्ज्वल–वर्ण शारदा प्रकट यहाँ लिपि के मिस।

उद्यानों में शाही रुचि चिनार–सी सस्मित,
दीर्घ सफेदे झीलों की नीलम अलकों में।
झलकें, मरकत खेत शालि के केसर–सुरभित,
सुन पड़ता किन्नर–मर्मर वन–घन चीड़ों में।

शिथिल पड़ गये सुर–वाणी के सदियों से स्वर,
राज–तरंगिणि लुप्त न मिटते स्मृतियों के तट।
रस की ध्वनि करते मार्तण्ड–सदृश अब खंडहर,
शेष प्रत्यभिज्ञा केवल ऊनी रेशम पट।

मलिन वस्त्र–सी अवनति से तेरे नारी–नर,
निकल उठें बाहर फिर से, कश्मीर मनोहर।

फिर कर लेने दो प्यार प्रिये

- दुष्यंत कुमार

अब अंतर में अवसाद नहीं,
चापल्य नहीं उन्माद नहीं।
सूना–सूना सा जीवन है,
कुछ शोक नहीं आल्हाद नहीं।

तव स्वागत हित हिलता रहता।
अंतरवीणा का तार प्रिये।।

इच्छाएँ मुझको लूट चुकीं,
आशाएँ मुझसे छूट चुकीं।
सुख की सुन्दर–सुन्दर लड़ियाँ।
मेरे हाथों से टूट चुकीं।।

खो बैठा अपने हाथों ही,
मैं अपना कोष अपार प्रिये।
फिर कर लेने दो प्यार प्रिये।।

जिन्दगी ने कर लिया स्वीकार,
अब तो पथ यही है।
अब उभरते ज्वार का आवेग मद्धिम हो चला है,
एक हलका सा धुंधलका था कहीं, कम हो चला है,
यह शिला पिघले न पिघले, रास्ता नम हो चला है,
क्यों करूँ आकाश की मनुहार,
अब तो पथ यही है।

क्या भरोसा, काँच का घट है,किसी दिन फूट जाए,
एक मामूली कहानी है, अधूरी छूट जाए,
एक समझौता हुआ था रौशनी से, टूट जाए,
आज हर नक्षत्र है अनुदार,
अब तो पथ यही है।
यह लड़ाई, जो की अपने आप से मैंने लड़ी है,
यह घुटन, यह यातना केवल किताबों में पढ़ी है,
यह पहाड़ी पाँव क्या चढ़ते, इरादों ने चढ़ी है,
कल दरीचे ही बनेंगे द्वार,
अब तो पथ यही है।

❖❖❖

व्यंग्य मत बोलो

- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

व्यंग्य मत बोलो
काटता है जूता तो क्या हुआ
पैर में न सही
सिर पर रख डोलो।
व्यंग्य मत बोलो।

अन्धों का साथ हो जाय तो
खुद भी आँखें बन्द कर लो,
जैसे सब टटोलते हैं
राह तुम भी टटोलो।
व्यंग्य मत बोलो।

क्या रखा है कुरेदने में,
हर एक का चक्रव्यूह भेदने में,
सत्य के लिए
निरस्त्र टूटा पहिया ले
लड़ने से बेहतर है
जैसी है दुनिया
उसके साथ हो लो।
व्यंग्य मत बोलो।

कुछ सीखो गिरगिट से
जैसी शाख वैसा रंग
जीने का यही है सही ढंग
अपना रंग दूसरों से अलग पड़ता है तो
उसे रगड़ धो लो।
व्यंग्य मत बोलो।

भीतर कौन देखता है
बाहर रहो चिकने,
यह मत भूलो
यह बाजार है
सभी आये हैं बिकने,
राम–राम कहो
और माखन–मिश्री घोलो।
व्यंग्य मत बोलो।

❖❖❖

जिन्दगी भी एक बहती धार है

– दयाशंकर अवस्थी 'देवेश'

बह पड़ी जिस ओर निर्भय तीव्र गति से,
बन गया बस मार्ग अब उसका वही।
लो कहाँ विश्राम पल भी ठहर कर,
क्योंकि उसका है न कोई जग कहीं।
दूर पर उसका बसा संसार है।।

मार्ग में पाषाण बन अरिदल मिले,
किन्तु वह अविराम बहती जा रही।
ले रही टक्कर निडर होकर सभी से,
सैकड़ों व्यवधान सहती जा रही।।
नवल गति का नित नया संचार है।।

प्रिय उदधि उसका कहाँ, कब है, मिले,
यह नहीं किंचित उसे आभास इसका।
साधना पूरी कभी होगी हमारी,
है भरा उसमें अटल विश्वास इसका।

साथ में वरदान औ उपकार है।।
जिन्दगी भी एक बहती धार है।।

❖❖❖

अहसासों के चन्दन वन में।

- चक्रपाणि पाण्डेय

जब–जब याद तुम्हारी बनकर, गीत जनम लेती,
एक नया स्वर सम्मोहन मन महका जाता है।।
युगों का अपना नाता है।।

नील गगन में रजत चाँदनी की चादर ओढ़े
हरसिंगार की खिल–खिल करती छुवन सरीखी तुम
छुवन तुम्हारी मन के अनगिन सपनों के जोड़े,
मेरी गुणन व्यवस्था बिगड़े हो जाऊँ गुमसुम
दर्द रह–रह उकसाता है।।
युगों का अपना नाता है।।

अहसासों के चंदन वन में मुझे लगे ऐसा
मुझ में भी संवेदन की कोपलें निकल आईं।
विह्वल इधर–उधर भटकूँ मैं कस्तूरी मृग सा–
पीर खोजती फिरे, तुम्हारी बनकर परछाईं
अकेला मन अकुलाता है।।
युगों का अपना नाता है।।

बिन्दु–बिन्दु पर स्वप्निल भावों का ऐसा अंकन,
अलसाई पलकों पर जैसे अंकित हो चुंबन,
मुक्त निर्झरी हँसी तुम्हारी केश लहरते घन,
देह तुम्हारी दहके–दहके टेसू का उपवन।
पपीहा बन मन गाता है।।
युगों का अपना नाता है।।

❖❖❖

तुम सजाओ उर्वशी चितवन सलोनी

- आर्य भूषण गर्ग

मैं तुम्हें अपने हृदय का प्यार दूँगा।
प्यार से ही प्यार का विनिमय करो यदि,
मैं तुम्हें विश्वास का आधार दूँगा।।

प्यार शाश्वत भावना है एक मन की,
यह नहीं आयात होती है कहीं से।
नयन मिलते ही लगे कुछ हो गया है,
प्यार बस आरम्भ होता है यहीं से।

गुनगुनाओगे कभी जो गीत कोई,
मैं तुम्हें संगीत की झनकार दूँगा।।

जब लगे मधुमास सा हर क्षण मिलन का,
रागमय उल्लास जागे जब अधर पर।
प्रिय परस की प्यास अब सिहरन जगाए,
बाहुओं में पुलकता आकाश भर कर।

जब निराशा की अमा में राह भूलो,
मैं शरद की चाँदनी उपहार दूँगा।।

तुम जगाओ प्रीत मीरा सी हृदय में,
फिर तुम्हें विषदंश भी अमृत लगेगा।
स्वर्ण का कुन्दन बनाती जो विलगता,
एक तप है, सत्य यह शाश्वत लगेगा।

अंकुरित तुम स्नेह मन में कर सको तो
भाव कि अभिव्यक्ति मैं साकार दूँगा।।

❖❖❖

अविरल मधुरिम कंठ मुझे दो

- नन्द कुमार मनोचा 'वारिज'

अविरल मधुरिम कंठ मुझे दो, गीत प्रेम के गा डालूँगा।

नयनों ने देखा है तुमको,
कौन–कौन सा रूप तुम्हारा।
मन की गहराई तक उतरा,
अंग–अंग चंदनी तुम्हारा।

तुम ऐसा स्वर–ज्ञान मुझे दो, अपना आप रमा डालूँगा।
अविरल मधुरिम कंठ मुझे दो, गीत प्रेम के गा डालूँगा।

अपना–अपना भाग्य सभी का,
मेरी किस्मत हाथ तुम्हारे।
एक साँस है वह भी तुम में,
प्राण टिके हैं इसी सहारे।

तुम कोमलतम स्पर्श मुझे दो, अन्तर सकल मिटा डालूँगा।
अविरल मधुरिम कंठ मुझे दो, गीत प्रेम के गा डालूँगा।

शून्य गगन है, शून्य धरा है,
सब ने अपना रंग भरा है।
मैं उन्मादी जनम–जनम का
मेरा तन–मन सुलग रहा है।

तुम मिलने का वचन मुझे दो, सब कुछ यहाँ भुला डालूँगा।
अविरल मधुरिम कंठ मुझे दो, गीत प्रेम के गा डालूँगा।

❖❖❖

एक नदिया है

-श्याम नारायण श्रीवास्तव 'श्याम'

एक नदिया है, शहर के बीच से होकर गुजरती है।
रूठती तो रेत, खिलते फूल, जब श्रृंगार करती है।।

कौन जाने किस दिशा जाना कहाँ पर मोड़ मुड़ना है,
उम्र भर चलना अकेले या किसी के साथ जुड़ना है।
हाथ की रेखाओं पर, भवितव्य पर, इतना भरोसा,
वक्त की निष्ठुर नियति भी सिर झुका स्वीकार करती है।

भास्कर, दिन के उजाले रश्मियों–मिस पत्र लिखता है,
रात में, संवाद करने चाँद चुपके से उतरता है।
कुछ नहीं कहती, बताती भी नहीं इच्छा, अनिच्छा,
ज्ञात उसको, एक क्षण में बात बनती है, बिगड़ती है।

हाँ, कभी बाँधी नदी तो, टूटते तटबन्ध देखे हैं,
बात हद से जब बढ़ी तो छूटते अनुबन्ध देखे हैं।
भूलकर लेकिन न देना दोष तुम कारण बिना जाने,
टीस बरसों की कभी होकर मुखर यूँ ही उभरती है।

एक है पर जहाँ जाती, मिन्न नूतन नाम पाती है,
कलुष भी पाती कहीं तो कहीं चारु प्रणाम पाती है।
शंख, सीपी, रत्न, मोती सौंप कर सारी धरोहर को,
समय–सागर अंक में सन्यस्त मन, होकर बिखरती है।

❖❖❖

गजल

- राजेन्द्र वर्मा

1

मेघमाला से स्वयं को वो लुभाती कब तलक?
रेत में चिड़िया नहाती–तो–नहाती कब तलक?

लाख कोशिश की, मगर फिर भी उसे बिकना पड़ा,
अपने बच्चे को वो भूखे ही सुलाती कब तलक?

आदमी का शर्म से रिश्ता पुराना था, मगर,
एक तरफा रिश्ता वो आखिर निभाती कब तलक?

व्याध के हाथों से निकली, किन्तु पिंजरे में फँसी,
जश्ने–आजादी को चिड़िया भी मनाती कब तलक?

गीत–गजलों का जमाना आ गया है दोस्तो!
वैर छन्दों से भला कविता निभाती कब तलक?

2

जिन्दगी मुश्किल बड़ी तो क्या हुआ?
है परीक्षा की घड़ी तो क्या हुआ?

हर दिवस की भूमिका में रात है,
रात गहरायी पड़ी, तो क्या हुआ?

सच को तन्हाई हमेशा–ही मिली,
है जो तन्हाई बड़ी, तो क्या हुआ?

सत्य के पथ पर सदा चलते रहो,
शेष जीवन दो घड़ी, तो क्या हुआ?

दासता स्वीकार्य कब 'राजेन्द्र' को,
मृत्यु भी सम्मुख खड़ी, तो क्या हुआ?

❖❖❖

मेरे मामा

- सरोजनी अग्रवाल

मेरे मामा बड़े निराले,
थोड़े गोरे थोड़े काले।

मुझको कहते गड़बड़झाला,
पर खुद पूरे गरम मसाला,
जाने कितने तोते पाले।
मेरे मामा बड़े निराले।।

काला–काला पहने चश्मा,
दिखा करिश्मा देते चकमा,
चाबी बिना खोल दें ताले।
मेरे मामा बड़े निराले।।

गाते मीठा–मीठा गाना,
कभी डांस करते मनमाना।
लंबे बाल जरा घुँघराले।
मेरे मामा बड़े निराले।।

जो गुस्सा हो जाएँ मामी,
झट से देते उन्हें सलामी,
बन जाते हैं भोले–भाले।
मेरे मामा बड़े निराले।।

❖❖❖

कंतक थैया

- श्रीकृष्णचन्द्र तिवारी 'राष्ट्रबन्धु'

कंतक थैया घुनूँ मनइयाँ
चंदा भागा पइयाँ–पइयाँ
यह चंदा चरवाहा है,
नीले–नीले खेत में,
बिल्कुल सैंत मैंत में,
रत्नों भरे खेत में,
किधर भागता, लइयाँ–पइयाँ।
कंतक थैया,घुनूँ मनइयाँ।।
अंधकार है घेरता,
टेढ़ी आँखें हेरता।
चाँद नहीं मुँह फेरता,
रॉकेट को है टेरता।
मून्नू को लूँगा मैं दइया,
कंतक थैया,घुनूँ मनइयाँ
मिट्टी के महलों के राजा,
ताली तेरी बढ़िया बाजा।
छोटा–छोटा छोकरा,
सिर पर रखे टोकरा,
बने डोकरा करूँ बलइयाँ।
कंतक थैया, घुनूँ मनइयाँ।।

❖❖❖

उड़ा कबूतर

- श्यामसिंह 'शशि'

उड़ा कबूतर
गोपी चंदर!
सुर रे भइया
कहाँ उड़ोगे,
तारों के घर!
मुझे ले चलो
अपने संग में,
नहीं करूँगी
तुमको तंग मैं!
बोलो–बोलो
क्या सोचा है,
मन के अंदर?
उड़ा कबूतर
गोपी चंदर
बैठो पिंकी
मैं चलता हूँ
तारों के घर,
वहाँ मिलेगी
दूध–मलाई
ऐसी तुमने
कभी न खाई।
और मिलेगा
यार मछंदर!
उड़ा कबूतर
गोपीं चंदर!
उड़कर पहुँचा
तारों के घर
पिंकी उतरी
फिर अंबर पर।
और चली यह
उछल–उछलकर
जैसे कोई
चलता बंदर!
उड़ा कबूतर
गोपी चंदर!

❖❖❖

दल बदलू हवाएँ

- सीताराम गुप्त

जो पहले लू बन चलती थीं,
वे अब बर्फीली कहलाएँ।

दल–बदलू हो गई हवाएँ।
सिर्फ हवा क्या, मौसम ने ही
अब तो ऐसा मोड़ लिया है,
दादी जी ने फिर निकालकर
गरम दुशाला ओढ़ लिया है।
सूरज ढलते ही मन कहता–
चल रजाइयों में छिप जाएँ,
कथा–कहानी सुनें, सुनाएँ।

सूरज की नन्हीं–सी बिटिया–
धूप सुबह ही चंचल लड़की,
द्वार–द्वार किलकारी भरती
झाँक रही है खिड़की–खिड़की।
बिस्तर छोड़ो, बाहर आओ,
चलो धूप से हाथ मिलाएँ
कर तैयारी शाला जाएँ।।

❖❖❖

रक्षा बंन्धन

- हरिकृष्ण 'प्रेमी'

बहन, बाँध दे रक्षा–बन्धन मुझे समर में जाना है,
अब के घन–गर्जन में रण का भीषण छिड़ा तराना है।
दे आशीष, जननि के चरणों में यह शीश चढ़ाना है,
बहन, पोंछ ले अश्रु, गुलामी का यदि दुःख मिटाना है।
अंतिम बार बाँध ले राखी
कर ले प्यार आखिरी बार–
मुझको, जालिम ने फाँसी की–
डोरी कर रक्खी तैयार।
रक्षा, रक्षा कायरता से, मर मिटने का दे वरदान,
हृदय–रक्त से टीका कर दे, दे मस्तक पर लाल निशान।
वह जीवन का स्रोत आज कर मेरे मानस में संचार,
अचल रहूँ मैं देख समर में रिपु की बिजली–सी तलवार।
अपना शीश कटा जननी की,
जय का मार्ग बनाना है।
बहन, बाँध दे रक्षा–बंन्धन
मुझे समर में जाना है,
जिसने लाखों ललनाओं के पोंछ दिए सिर के सिन्दूर,
गड़ा रहा कितनी कुटियाओं के दीपों पर आँखें क्रूर।
वज्र गिराकर कितने कोमल हृदय कर दिए चकनाचूर,
उस पापी की प्यास बुझाने, बहन, जा रहे लाखों शूर।
मृत्यु–विटप की शाखा पर मैं,
डाल हिंडोला झूलूँगा।
दो पीगों में अमर लोक की,
अंतिम सीढ़ी चूमूँगा।
बहन, शीश पर मेरे, रख दे स्नेह–सहित अपना शुभ हाथ,
कटने के पहले न झुके यह, ऊँचा, रहे गर्व के साथ।
उस हत्यारे ने कर डाला, अपना सारा देश अनाथ,
आश्रयहीन हुई यदि तू भी, ऊँचा होगा तेरा माथ।
दीन भिखारिन बनकर तू भी
गली–गली फेरी देना–
'उठो बंधुओ', विजय–वधू को
वरो, तभी निद्रा लेना'
आज सभी देते हैं अपनी बहनों को अमूल्य उपहार,
मेरे पास रखा ही क्या है, आँखों के आँसू दो–चार।
ला, दो–चार गिरा दूँ, आगे अपना आँचल विमल पसार,
तू कहती है– ये मणियाँ हैं, इन पर न्यौछावर संसार।
बहन, बढ़ा दे चरण–कमल, मैं
अंतिम बार उन्हें लूँ चूम।
तेरे शुचि स्वर्गीय स्नेह के,
अमर नशे में लूँ अब झूम।

❖❖❖

प्रयाण-गीत

- रामधारी सिंह दिनकार'

जाग रहे हम वीर जवान,
जियो, जियो ऐ हिंन्दुस्तान!
हम प्रभात की नई किरण हैं, हम दिन के आलोक नवल,
हम नवीन भारत के सैनिक, धीर,वीर, गंभीर, अचल।
हम प्रहरी ऊँचे हिमाद्रि के, सुरभि स्वर्ग की लेते हैं।
हम हैं शांति–दूत धरणी के, छाँह सभी को देते हैं।
वीरप्रसू माँ की आँखों के, हम नवीन उजियाले हैं,
गंगा, यमुना, हिंद महासागर के हम रखवाले हैं।
तन, मन, धन तुम पर कुर्बान,
जियो, जियो ऐ हिंन्दुस्तान!
हम सपूत उनके, जो नर थे, अनल और मधु मिश्रण,
जिनमें नर का तेज प्रखर था, भीतर था नारी का मन।
एक नयन संजीवन जिनका, एक नयन था हालाहल,
जितना कठिन खड्‌ग था कर में, उतना ही अंतर कोमल।
थर–थर तीनों लोक काँपते थे जिनकी ललकारों पर,
स्वर्ग नाचता था रण में जिनकी पवित्र तलवारों पर।
हम उन वीरों की संतान,
जियो, जियो ऐ हिन्दुस्तान!
हम शकारि विक्रमादित्य हैं अरि–दल को दलने वाले,
रण में जमीं नहीं, दुश्मन की लाशों पर चलने वाले।
हम अर्जुन, हम भीम, शांति के लिए जगत में जीते हैं,
मगर, शत्रु हठ करे अगर तो, लहू वक्ष का पीते हैं।
हम हैं शिवा–प्रताप, रोटियाँ भले घास की खाएंगे,
मगर, किसी जुलमी के आगे, मस्तक नहीं झुकाएँगे।
देंगे जान, नहीं ईमान,
जियो, जियो ऐ हिन्दुस्तान!
जियो, जियो ऐ देश! कि पहरे पर ही जगे हुए हैं हम,
वन, पर्वत, हर तरफ चौकसी में ही लगे हुए हैं हम!
हिन्द–सिंधु की कसम, कौन इस पर जहाज ला सकता है?
सरहद के भीतर कोई दुश्मन कैसे आ सकता है?
पर की हम कुछ नहीं चाहते, अपनी किन्तु बचाएँगे,
जिसकी उँगली उठी, उसे हम यमपुर को पहुंचाएँगे।
हम प्रहरी यमराज–समान,
जियो, जियो ऐ हिन्दुस्तान!

❖❖❖

तुमको देश पुकार रहा है

- श्रीमती कृष्णा अवस्थी

जागो सिंह सपूत धरा के तुमको देश पुकार रहा है।
वीर प्रसवनी धरती के सुत
तुम प्रताप–से बलधारी।
स्वाभिमान मेवाड़ तुम्हीं हो
भू मण्डल के अधिकारी।
तुम हिमाद्रि उत्तुंग तुम्हारे सागर चरण पखार रहा है।
दृढ़प्रतिज्ञ बन भीष्म पितामह
भीमार्जुन सम बलशाली।
दूर करो अवरोध प्रगति के
भू पर फैले हरियाली।
जातिवाद औ' भेदभाव का तक्षक अब फुफकार रहा है।
वज्र हस्त से चट्टानों को
सदा तुम्हीं ने तोड़ा है।
स्वाभिमान के लिए सभी कुछ
तुमने पीछे छोड़ा है।
खुली चुनौती आज मिल रही रोम–रोम धिक्कार रहा है।
बालक ध्रुव प्रहलाद भरत
लवकुश अभिमन्यु समान बनो।
रचो एक इतिहास नया
तुम ऐसे प्रतिभावान बनो।
अद्भुत् शक्ति दिखा दो अपनी, तुम्हें शत्रु ललकार रहा है।
मानव–धर्म प्रतिष्ठित करके
सत्य–प्रेम का सार भरो।
संस्कृति–रक्षा हित वसुधा पर
आर्य धर्म विस्तार करो।
गीता का उपदेश तुम्हारा जीवन–दर्शन–सार रहा है।

❖❖❖

इस धरा की धूल वन्दनीय है

- श्रीमती चन्द्रकांता चन्द्र

इस धरा की धूल वंदनीय है,
भाल चढ़ा लो समझ के चंदन।
स्वर मिला के राष्ट्र गीत गाओ,
सिर झुका के माँ को करो वन्दन।

हो स्वतंत्र झूम रहे नंदन वन,
आग बन के पलाश दहके हैं।
बाग में खिले कचनार–कुसुम,
सुरभि बही घर–आँगन महके हैं।

लड़खड़ायें पग जो भारतीयों के,
प्राणों में भर दो स्पन्दन।।

इस अखंड देश के न खंड करो,
मूढ़ता की सीमा मत लाँघो तुम।
अपना सब कुछ कहीं गँवा न दो,
वन्दिनी फिर न माँ बनाओ तुम।

निशिचर बन आयें आतंकी तो,
राघव आयेंगे चढ़ स्यन्दन।।

देश की अखंडता रहे बनी,
कोटि–कोटि हाथ बढ़ा देंगे हम।
चाहेगी माटी जो देश की,
शीश सुमन हँस के चढ़ा देंगे हम।

अर्जुन बन बाण चढ़ा लेंगे,
सारथी बनेंगे नंद–नंदन।।

❖❖❖

आखर-आखर नाम तुम्हारा

- निर्मला 'साधना'

मैं तो आई द्वार तुम्हारे अपने मन की अलख जगाने,
तुमने मुझे पूज तुलसी–सा सबका सब पावन कर डाला।

कैसे कहती द्वार हमारे–
आया मौसम ले अँगड़ाई।
वासन्ती मनुहारें आँगन
बिखरा गई हठी पुरवाई।

नेह–नीर से भरी कठौती लाई धोने चरण तुम्हारे,
डूब जाय मन प्राण कि तुमने मन–मन अवगाहन कर डाला।

सुधियाँ कहीं बरज पाती तो–
जनम न लेती पीर अभागी।
मंत्रपूत–सी जाग–जाग कर–
ये अँखियाँ जागी की जागी।

रोम–रोम में परस तुम्हारा साँस–साँस स्पन्दन तेरे,
आखर–आखर नाम तुम्हारा मन को वृन्दावन कर डाला।

प्रीत नहीं होती बैरागिन,
साँझ न जी पाता उजियाला।
मुझसे मेरी छीन अस्मिता–
बोलो तुमने क्या कर डाला।

रत्ना तो मैं नहीं कि मन के इस तुलसी को बहला पाती,
ओ मेरे सिद्धार्थ! बता दो कैसे स्वप्नहवन कर डाला।

❖❖❖

मन का दर्पण

-मंजुलता तिवारी सुशोभिता

कभी झाँककर अंतस् देखा, मिला मुझे मन दर्पण–सा!!
गयी रीझ उन चित्रों पर, था जिनमें भाव समर्पण–सा!!

इस दर्पण ने सदा दिखाए चित्र तुम्हारी छवियों के!
रंग भावों के घुले इसी में मिल कर प्यासी सुधियों के!

सुधियों–छवियों के मेले में, है विचित्र आकर्षण–सा!!
कभी झाँक कर अन्तस् देखा, मिला मुझे मन दर्पण–सा!!

इस आकर्षण में बंध कर ही जीवन को सोपान मिले!
राह कहाँ ले जायेगी इस अन्तस् को अनुमान मिले!

हुये सभी अनुमान जो धुँधले, पलता एक विकर्षण–सा!!
कभी झाँककर अन्तस् देखा, मिला मुझे मन दर्पण–सा!!

मिलन–विरह में बँट जाता है धूप–छाँव–सा यह जीवन।
दुःख की केवल छाया से ही जल जाता है यह उपवन!

इस उपवन में मन बैठा है भाव जगाये अर्पण–सा!!
कभी झाँककर अन्तस् देखा, मिला मुझे मन दर्पण–सा!!

केवल एक समर्पण से ही जले द्वीप विश्वासों के!
टूटे तार इसी से जुड़ते हैं इन बिखरी साँसों के!

साँसों से जब साँस मिली तो सुख पाया उत्कर्षण–सा!!
कभी झाँककर अन्तस् देखा, मिला मुझे मन दर्पण–सा!!

❖❖❖

आधार दिया क्यों तुमने

- श्रीमती शालिनी

खड़ा किया पतझड़ में, फिर–
मधुमास दिया क्यों तुमने?
देने थे जब अश्रु मुझे
फिर प्यार दिया क्यों तुमने?
मैंने समझा शूलों को ही
जीवन का सहयोगी,
स्वार्थ दिखाया तुमने पर
निज को समझा अभियोगी।
अपना कर मलयज बयार सा
मिलन दिया क्यों तुमने?
मम मानस बन गया
व्यथाओं का ही तो अनुरागी,
फूलों से हो दूर बना,
काँटों का पूर्ण विरागी।
देनी थी जब व्यथा
प्रेम का ज्वार दिया क्यों तुमने?
अनजानी राहों पर थे
मारीचक दृश्य विचारे,
थे भविष्य में खोये हम तो
वर्तमान से आगे।
मुझे टूटना था यदि
निज आधार दिया क्यों तुमने?

❖❖❖

सात सुरों से ताल

- रश्मि अग्रवाल

सात रंगों से सजता जीवन
सात सुरों से–ताल,
पिया जी छेड़ें तार हृदय के, रुके समय की चाल।
आखर–आखर जैसे बोले
शब्द–शब्द ज्यूँ छनके,
पंक्ति–पंक्ति विश्वासों की
रचती गीत मिलन के।
कली–कली कविता सी खिलती
भँवरे करें धमाल।।

सूरज–चाँद सितारे धरती
पर्वत, नदियाँ सागर,
विरह वेदना हर लेती है–
आशाओं की गागर।
लाल–गुलाल गाल हुवै जब
आ जावें नंदलाल।।

प्रियतम रूप हुआ ये अंबर
प्रियतमा हुई धरती,
बीज उगे जीवन का तब ही
बूँद गगन से झरती।
सोलह हों श्रृंगार के रंग, तो–
रूप हो माला माल।

❖❖❖

आवरण

– डा. अमिता दुबे

अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच
होता है एक झीना आवरण
कभी यह आवरण
होता है पारदर्शी
जिसके आर–पार
देता है सब कुछ दिखायी
ऐसे में
अनुभूति की विवशता
अभिव्यक्ति की सरलता बन जाती है

अनुभूति और अभिव्यक्ति
के बीच का
यह झीना आवरण
कभी होता है अपारदर्शी
जिसके आर–पार
कुछ भी नहीं देता दिखायी
ऐसे में
अनुभूति की तरलता
अभिव्यक्ति की सफलता बन जाती है

अनुभूति और अभिव्यक्ति
के बीच का
यह झीना आवरण
चाहे पारदर्शी हो
या हो अपारदर्शी
समाज की सच्चाई को
जितनी गहराई से स्पर्श करता है
हमारे मन को
उतनी ही गहराई से छूता है
तभी अभिव्यक्ति की विविधता
रचना की उत्कृष्टता बन जाती है।

❖❖❖

अन्तर्द्वन्द्व

- रचना शुक्ल

जब रात के अँधेरे को
अजगर के मुँह की तरह
सड़क निगलने लगती है
तब अँधेरा भी अजगर को
ढक लेता है, दबा लेता है
और यह युद्ध देख पाता है
सिर्फ वह नन्हा सा
गली के मोड़ पर
खंभे पर लटका बल्ब
मैं बल्ब हूँ
तुम्हें तुमसे लड़ते हुए देखती हूँ
जैसे अँधेरा और अजगर
एक ही रंग के हैं
वैसे ही तुम और तुम्हारा ''मैं'' है
जो एक ही है, फिर भी
लड़ते हैं,दबाते हैं, टूटते हैं, चटकते हैं,
और तुम मुझे किसी बच्चे की तरह
बहलाकर कह देते हो
''कुछ नहीं हुआ''

❖❖❖

एक हरा पत्ता

- डा. शान्ति देव बाला

विशाल भव्य कोठियों में,
रहने बसने वाले सुन्दर सँवरे लोग,
होते नहीं सदा विशाल उदारमना
सुरभित फूलों से सुवासित मकानों में,
हमेशा खिले खिलखिलाते नहीं रहते।
नहीं होते कंच हरे लाँनों से घिरे विला में
हरे भरे, हरेहरे भरे–भरे, लोग।
हो सकते हैं एक दम ठूँठ सूखे काठ से,
तड़पते अपमानों से दग्ध,
प्रतिशोध अपराध बोध से दहकते,
खीझे कडुवे रिश्तों की कडुवाहट से।
ढूँढ़ते एक शीतल धार स्नेह की।
टूटे रिश्तों के झड़े पत्तों के अम्बार में,
तरसते देखने को एक हरा पत्ता,
जो टूट कर जा गिरा झाड़ियों नीचे,
सूखे पत्तों में, सूख जाने को।

❖❖❖

प्रिय सदा चलते रहो तुम

- कु0 सावित्री

लक्ष्य पथ पर प्रिय सदा चलते रहो तुम
मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगी।
मैं तुम्हारी नींद में सपने भरूँगी,
मैं तुम्हारी राह को निर्मल करूँगी,
यदि कभी पथ पर तिमिर के शूल बिखरे,
तो प्रथम उन पर चरण अपना धरूँगी।
बस तुम्हारा काम पुष्पों को सजाना,
मैं तुम्हारी अर्चना पूरी करूँगी।।
लक्ष्य पथ पर प्रिय.....
जानते हो गीत की होती न भाषा,
भावभानी प्रीति की होती न भाषा,
प्रिय तुम्हारे सामने होती विनत जब,
उस अनोखी जीत की होती न भाषा।
चाहते मुझको अनोखी कृति बनाना,
मैं तुम्हारी कल्पना पूरी करूँगी।।
लक्ष्य पथ पर प्रिय.....
मैं तुम्हारी प्रेरणा बन कर रहूँगी,
मैं तुम्हारी चेतना बन कर रहूँगी,
बीत रागी तुम तनिक चिन्ता न करना,
मैं तुम्हारी वेदना बन कर रहूँगी।
हे सृजन के देवता साहस न खोना,
मैं तुम्हारी साधना पूरी करूँगी।।
लक्ष्य पथ पर प्रिय सदा चलते रहो तुम
मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगी।।

❖❖❖

नहीं है लाचारी में

- हीरा लाल

कुछ फर्क नहीं पड़ता है कभी उसकी बेरुखी से,
गर्ज नहीं मगरूर को जायें, मनाने के लिए।

दर्द बढ़ता है तो बढ़ ले अब चाहे जितना भी,
कहेंगे नहीं उससे कभी यहाँ आने के लिये।

क्या–क्या नहीं गुजरी है बेकस दिल पर मेरे,
मगर वह न आये कभी दिल को झाँकने के लिये।

हो जायेंगे संग दिल से बढ़कर तंग दिल वह कभी,
सोचते कैसे बढ़े न हाथ, कुछ पाने के लिये।

जिद नहीं, फख्र से उठा है जो सर अब गैरत का,
नहीं है लाचारी में वह सर झुकाने के लिये।

मिल जाये मंजिल

मैं अगर कुछ कहता नहीं हूँ जबाँ से कभी,
न समझिये कुछ महसूस नहीं करता हूँ मैं।

बखूबी एहसास है मुझे मजबूरियों का,
क्या सफर मजबूरी का नहीं करता हूँ मैं।

डर कर वह खफा न हो जायें कुछ कहने से,
उसकी ही खुशियों का ख्याल रखता हूँ मैं।

कोई खता न हो जज्बात के इशारे पर,
पहुँचेगी ठेस, दिल की बात कहता हूँ मैं।

वह खुद ही बने रहनुमा अपनी चाहत का,
मिल जाये मंजिल उसको, दुआ करता हूँ मैं।

❖❖❖

आदमी

- अजय सिंह वर्मा

अरे आदमी!
तू कहाँ से कहाँ जा पहुँचा
पाताल से उठकर आसमान तक
जा पहुँचा।

लेकिन इस बीच तेरी आदमियत कहाँ गुम हो गई
उसे तो हैण्डलेन्स लेकर
ढूँढ़ने की जरूरत हो गई।

मैंने देखा है
रेल, मोटर, हवाई जहाज
चलाता हुआ आदमी
अपनी गलती से
आदमी को लाश बनाता हुआ
आदमी।

चीत्कार मारता आदमी
चीत्कार करता आदमी
छाती कूटता आदमी
टूटकर जुड़ता, फिर टूटता आदमी
लाशों का कफन घसोटता आदमी।

कंगन, चूड़ियाँ, नथ, बालियाँ
मंगल–सूत्र नोचता आदमी
लाशों के आँकड़े बदलता आदमी
लाशों को रौंदता, कुचलता आदमी
नौनिहालों के सपने गड़पता आदमी
आदमी को ढोता आदमी
फुटपाथ पर सोता आदमी
अपनी पहचान खोता आदमी
बारूद बोता आदमी
पैसे के लिए बैलवत् जोतता आदमी
अपने पैरो पर
खुद अपनी लाश ढोता आदमी

❖❖❖

अपना बन जाने दो

– मोहन चन्द्र त्रिपाठी 'मोहन'

अस्वीकार स्वीकार मुझे है,
न कहकर रुक जाने दो।
अन्तस् है तैयार निरन्तर,
सिसकन में सुख पाने दो।।

तिरस्कार की चाह न झूठी,
पाँवों में गिर जाने दो।
झिड़की में भी मीठापन है,
अपना मीत कहाने दो।।

कटुक वचन जयकार मुझे,
बस नाम अधर तक आने दो।
चिर वैधव्य सुहाग बने,
यदि सूनी सेज सजाने दो।।

सब चुभनों से प्यार करूँ मैं,
यादों मे विंध जाने दो।
चिर तड़पन आनन्द बनेगा,
अन्तर्व्यथा सुनाने दो।।

दुत्कारें स्वीकार प्रिये,
आँखों की तृषा बुझाने दो।
हर पीड़ा उपचार मुझे,
पल भर अपना बन जाने दो।।

❖❖❖

बेटियाँ

-जगदीश शुक्ल

आँगन की शोभा बन जाती जब होता जन्म,
दर्शनीय होती गोद में चढ़ाई उसकी।
तुतला के बोले और ठुमक–ठुमक चले,
मन रम जाता देख के चलाई उसकी।
पालने में उसके असीम तोष मिलता है,
होती मन मोहिनी है चतुराई उसकी।
पिता–सुता नाता अति पावन सुखद भी है,
किन्तु दुखदाई होती है बिदाई उसकी।।

माँ को तरसाती है

जन्म से ही होती बेटी माँ की परछाई और–
ममता की छाया तले शुचि प्यार पाती है।
उँगली पकड़ माँ की करती परिक्रमा है,
पा के सीख जीवन को सफल बनाती है।
घर के समस्त काम–काज में बँटा के हाथ,
बेटी माँ के हाथों का सहारा बन जाती है।
बेटी की कहानी यही होती है सयानी ज्यों–ज्यों–
बनती सहेली फिर माँ को तरसाती है।।

❖❖❖

हुई आज भयभीत दुनिया ये सारी

- राकेश चक्र

हुई आज भयभीत दुनिया ये सारी।
दिखावा बढ़ा और बढ़ी होशियारी।।
अगर रोम में हो, बनो रोम जैसे–
निभानी पड़ेगी, हमें दुनियादारी।।
हमें गैर से तो शिकायत नहीं है–
मगर अपनों से ही, मिली सेंधमारी।।
कयामत से भी कम नहीं हुस्न तेरा–
बहुत कातिलाना नजर भी तुम्हारी।।
ये कैसा मुकाम आ गया क्या कहूँ मैं?
हमीं हैं शिकार और हमीं है शिकारी।।
कहाँ खो गए बेवफा कुछ तो बोलो–
वो वादे तुम्हारे, वो कसमें तुम्हारी।।
हमें भूल जाने का, है शौक तुमको–
तुम्हें याद रखने की, आदत हमारी।।
बहुत नाज करता है, खुद पर ये जालिम–
जमाने पे है, हुस्न की थानेदारी।।
जो आया है जायेगा, इक दिन जहाँ से–
कहाँ हैं, बड़े–से–बड़े नामधारी?
न मर पाए कोई, न जी पाए कोई–
मुहब्बत की शमशीर है ये दोधारी।।
बुराई के शिशुपाल को, जीने मत दो–
उठा 'चक्र' खुद ही बनो चक्रधारी।।

❖❖❖

उदासी नहीं है

- वाहिद अली 'वाहिद'

सजती है दीपों से थाली, तब याद तुम्हारी आती है!
आती है शहर में दीवाली तब याद तुम्हारी आती है!
जगमग करते जलसा घर से अभिनन्दित होकर आता हूँ!
जब लोग बजाते हैं ताली, तब याद तुम्हारी आती है!

जब होता हूँ बिल्कुल खाली, तब याद तुम्हारी आती है!
जब रातें हों बिल्कुल काली, तब याद तुम्हारी आती है!
मैं यादों के वृन्दावन में, फूलों सा बदन सहलाता हूँ!
चुभती है गुलाबों की डाली, तब याद तुम्हारी आती है!

सभी नाराज हैं, जिनकी तरफ नहीं देखा!
तुम्हारे बाद, किसी की तरफ नहीं देखा!
बहुत से ख्वाब थे, पिछली सदी की आँखों में,
मगर मैंने कभी उसकी तरफ नहीं देखा।

मेरी आँख नम है, ये प्यासी नहीं है।
शिकायत भी तुमसे, जरा सी नहीं है।
कोई याद आया तो भर आईं आँखें,
तुम्हारे लिए ये उदासी नहीं है।

❖❖❖

गजल

- प्रीतम सिंह राही

ये पेड़ जो सदियों से धरा से सटे हैं।
कब किसी डगर पे दो पैर चले हैं।

अपनी कब्र पे जलाये हैं खुद ही दिये,
कुछ लोग इस तरह भी जिये, मरे है।

आँधियों में मिट जायेगा अस्तित्व उनका,
जो अक्षर हवा में तुम ने लिखे हैं।

इसकी खामोशी को स्वीकृति न समझो,
इस समंदर के नीचे बड़े जलजले हैं।

मंडरायेंगे इक दिन यह भूत बनकर,
जो लोग पावों के नीचे दले है।

जीने का अंदाज नया है।
खुद मर कर ये जान लिया है।

दर्द उभर कर बाहर आया,
आँसू बनकर छलक गया है।

मौन की भाषा वह क्या जाने,
जिसने भाषण उगल दिया है।

खुद ही अपने आँसू पोंछे,
खुद ही अपना घाव सिया है।

दुःख कैसा हो सह ही लेंगे,
अपने को जब साध लिया है।

❖❖❖

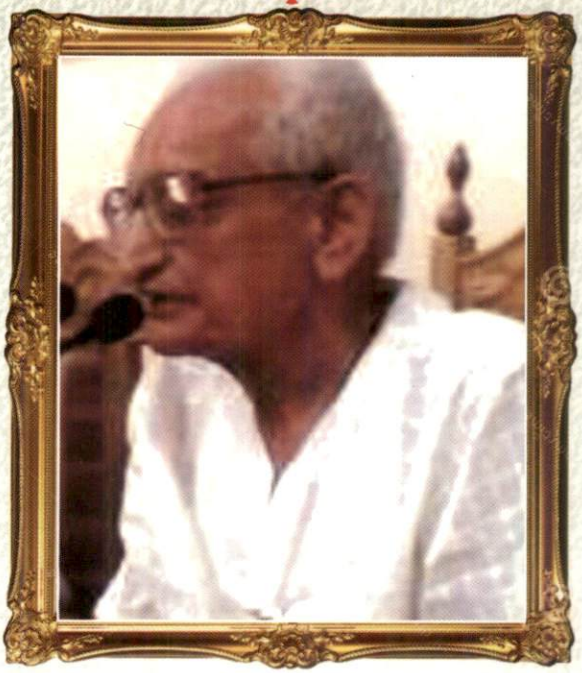

डा. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय

जन्म- 30 जुलाई 1923, निधन- 21 मई 2011

ये दिन फिर न आयेंगे–
यह हवा, यह चाँदनी रात,
यह जीने की फुरसत
यह तुम्हारा साथ!
झूमता संगीत
मानो एक सागर में कहीं
लहरा रही हों तान,
गूँजते हैं शब्द, ध्वनियाँ,
बन गया मन बाँसुरी–सा
स्वर–भरा अवकाश...
कैसे बटोरें कुछ पलों में
जिन्दगी को
अश्रु पलकों में खुशी के
भाग्य की सौगात
यह तुम्हारा साथ।

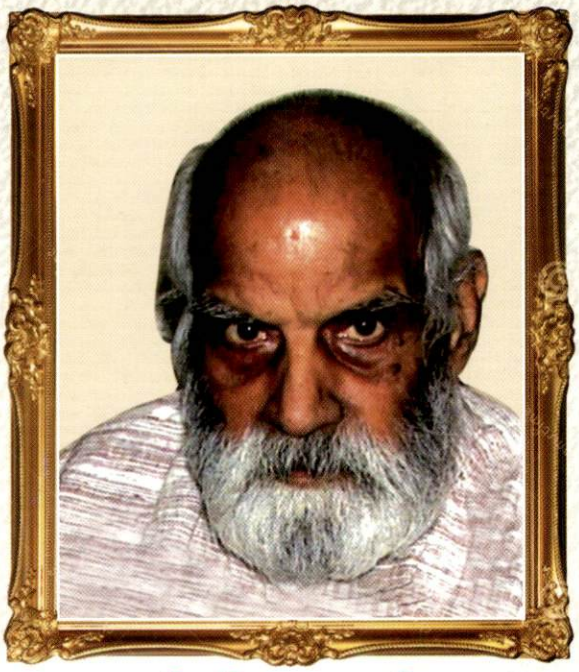

त्रिलोचन शास्त्री

जन्म- 20 अगस्त 1917, निधन- 09 दिसम्बर 2007

वही त्रिलोचन है, वह–
जिसके तन पर गंदे कपड़े हैं।
कपड़े भी कैसे–फटे लटे हैं
यह भी फैशन है, फैशन से कटे–कटे हैं।
कौन कह सकेगा इसका–
यह जीवन चंदे पर अवलम्बित है।
चलना तो देखो इसका–
उठा हुआ सिर, चौड़ी छाती, लम्बी बाहें,
सधे कदम, तेजी, वे टेढ़ी–मेढ़ी राहें
मानो डर से सिकुड़ रही हैं, किस का किस का
ध्यान इस समय खींच रहा है। कौन बताए,
क्या हलचल है इसके रुँधे–रुँधाए जी में
कभी नहीं देखा है इसको चलते धीमे।
धुन का पक्का है, जो चेते वही चिताए।
जीवन इसका जो कुछ है पथ पर बिखरा है,
तप–तप कर ही भट्ठी में सोना निखरा है।